



**पर्यावरण :
समस्या
और
समाधान**

आचार्य महाप्रज्ञ

पर्यावरण : समस्या और समाधान

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती, लाडनूं

पर्यावरण : समस्या और समाधान

सम्पादक : मुनि सुखलाल

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

मूल्य : रुपये 10.00

संस्करण : 2003

मुद्रक : कला भारती, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

निवेद्य

वैज्ञानिक प्रगति के प्रथम दौर में धर्म को एक निषेधक भूमिका के रूप में स्वीकार किया गया था। लोगों को ऐसा अनुभव हुआ कि धर्म जीवन को कष्ट में डालता है इसीलिए भोगवादी जीवन दृष्टि का विकास हुआ। पर ज्यों-ज्यों भोगवाद का विस्तार हुआ त्यों-त्यों समस्याएं भी फैलती गईं। यद्यपि अब भी विज्ञान जीवन को सुखमय बनाने का प्रयास कर रहा है, पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि भोगवाद पर अंकुश नहीं लगाया गया तो प्रदूषण से होने वाली विकृतियों से मनुष्य का जीवन संकट मय बनेगा ही। इस निषेध के पीछे मनुष्य की बहुत लम्बी अनुभूति छिपी हुई है। महावीर की हिंसा की बात को आज प्रदूषण के रूप में पहचाना जा रहा है। शब्द तो समय-समय पर बदलते ही हैं, पर अर्थ शाश्वत है। इसीलिए महावीर आज बहुत प्रासंगिक बन गए हैं। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी के अणुव्रत की भी यह एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि है।

आचार्य महाप्रज्ञ जैन-आचार्य हैं, महावीर की परम्परा के प्रतिनिधि हैं, इस बात को उनमें बहुत स्पष्टता से पहचाना जा सकता है। संभवतः वे प्रकृति के सर्वाधिक नजदीक हैं। इसीलिए पर्यावरण के बारे में उनके विचार नितांत अनुभूतिपूर्ण हैं, विज्ञान के भी बहुत नजदीक है। पर्यावरण के बारे में उन्होंने बहुत सोचा, कहा, और लिखा है। उनके विचार अनेक पुस्तकों, प्रवचनों में बिखरे पड़े हैं। मैंने उनके थोड़े से अंश को संकलित करने का प्रयास किया है। मुझे विश्वास है इससे समस्या को समझने और सुलझाने की आचार्य महाप्रज्ञ की सूक्ष्म दृष्टि का भी सभी को परिचय प्राप्त होगा।

जैन विश्व भारती
29 मई 1996

— मुनि सुखलाल

पर्यावरण : समस्या और समाधान

मनुष्य आज अनेक दिशाओं में अकल्पित प्रगति कर रहा है पर पर्यावरण संकट के रूप में वह ऐसे खतरनाक बिन्दु पर भी पहुंच रहा है जहां विकास की सारी यात्रा पर प्रश्नचिन्ह खड़ा हो गया है।

दुनिया में अपना एक निश्चित सन्तुलन है। सारी प्रकृति तालबद्ध तरीके से चल रही है। कुछ लोग मानते हैं कि इस गतिमयता के पीछे ईश्वर का हाथ है। वही सृष्टि की सर्जना करता है, वही इसका पोषण करता है और वही इसका विनाश करता है। पर जैन दर्शन ऐसी किसी ईश्वर-शक्ति में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार तो सब कुछ अपने प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही हो रहा है। फिर भी मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो इस प्राकृतिक व्यवस्था को लांघकर अपने असंयम से या-वैज्ञानिक-प्रगति-के नाम पर कुछ ऐसा प्रयत्न कर रहा है जिससे इस सहज सन्तुलन के बिगड़ने का खतरा पैदा हो रहा है।

मिथ्या दृष्टिकोण

आज यह धारणा बनी हुई है— सब पदार्थ मनुष्य के उपभोग के लिए बने हैं। इस मिथ्या दृष्टिकोण से पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है। बहुत सारे वैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्ता, राजनेता बार-बार इस बात को दोहराते हैं— पर्यावरण का प्रदूषण हो रहा है और यही क्रम चलता रहा तो एक दिन पृथ्वी हमारे लिए उपयोगी नहीं रहेगी, प्राणी मात्र के लिए रहने लायक नहीं रहेगी, भयंकर बन जायेगी। इसलिए पर्यावरण का ज्ञान कराया जाए और इस प्रदूषण को समाप्त किया जाए। दुनिया के हर कोने में पर्यावरण के लिए आंदोलन चल रहा है। क्या केवल आंदोलन से पर्यावरण के प्रदूषण को मिटाया जा सकता है? ऐसा सम्भव नहीं लगता। प्रदूषण का जो मूल कारण है, वह है मिथ्या दृष्टिकोण। जब तक दृष्टिकोण सम्यक् नहीं बनता, प्रदूषण को मिटाने की बात कोरी कल्पना रह जाएगी।

स्वतंत्र है सत्ता

हम लोग मुनि बने। नए मुनि को सबसे पहले दशवैकालिक सूत्र सिखाया जाता है। उसका एक सूक्त है—‘पुढो सत्ता’— प्रत्येक प्राणी की स्वतंत्र सत्ता है। चाहे वह छोटा पौधा है, चाहे वह कोंपल है, चाहे वह छोटा पत्ता है और चाहे वह एक छोटा सा अग्नि का कण है। सबकी स्वतंत्र सत्ता है। एक मिथ्या धारणा बन गई और यह मान लिया गया कि सब पदार्थ मनुष्य के लिए बनाये गये हैं। विश्व का एक बड़ा वर्ग मांसाहारी लोगों का है। जब-जब मांसाहारी लोगों से संपर्क होता है, उनसे यह पूछा जाता है मांस क्यों खाते हो? उत्तर मिलता है— अगर मांस न खाए तो भगवान ने पशु बनाएं ही क्यों? ये पशु-पक्षी मनुष्य के लिए ही तो है। जब उन्हें कहा जाता है कि शेर आने पर तुम भागते क्यों हो? तुमको खाने के लिए ही तो शेर को बनाया गया है। वे इस प्रश्न को सुनकर मौन हो जाते हैं।

नष्ट हो रही हैं प्रजातियां

यह गलत धारणा बन गई— मनुष्य इस दुनिया में श्रेष्ठ प्राणी है। सृष्टि के सारे पदार्थ मनुष्य के लिए बनाये गये हैं, उसके उपभोग के लिए बनाए गये हैं। इस आधार पर उपभोक्ता

संस्कृति का निर्माण हुआ। आज उपभोक्ता संस्कृति इतनी व्यापक बन गई, यह धारणा इतनी व्यापक हो गई कि सब कुछ मनुष्य के लिए बनाया गया है, मनुष्य चाहे जैसे उसका उपभोग कर सकता है। इस मिथ्या धारणा के कारण आदमी इतना उच्छृंखल हो गया कि कहीं भी साधना, संयम जैसी बात उसके सामने नहीं रही। इस उपभोक्तावादी संस्कृति का परिणाम यह आया—मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना शुरू कर दिया। प्राकृतिक संसाधन समाप्त किये जा रहे हैं, अनगिन पशु-पक्षी मारे जा रहे हैं। एक जीव विज्ञानी ने अपने वक्तव्य में कहा—‘आज का मनुष्य कैसा बन गया है? वह प्रतिवर्ष हजारों-लाखों पशु-पक्षियों को नष्ट कर देता है।’ काफी अनुसंधान के बाद उसने यह निष्कर्ष निकाला ‘एक हजार प्रजातियां नष्ट हो रही है। आखिर बचेगा क्या? मनुष्य यदि सबको मार डालेगा तो फिर क्या बचेगा? कोरा आदमी बचेगा।’

ज्वलंत प्रश्न

पर्यावरण के संदर्भ में आज यही ज्वलंत प्रश्न है, यदि मनुष्य इसी प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता चला जाएगा तो क्या बचेगा? पृथ्वी है, पानी है, अग्नि है, वायु है और सबसे बड़ी बात वनस्पति का जगत् है तो आदमी है। आदमी अकेला जी नहीं सकता। भगवान् महावीर ने सत्य का साक्षात्कार किया था और उस सत्य के साक्षात्कार के बाद उन्होंने कहा था—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति—इन सबकी स्वतंत्र सत्ता है। ये किसी के लिए नहीं बने हैं, मनुष्य के खाने के लिए नहीं बने हैं। मनुष्य इन्हें खाता चला जाए, इसलिए नहीं बने हैं। ‘सबकी स्वतंत्र सत्ता है’ यह सच्चाई समझ में आ जाए तो इन सबके प्रति इतना अतिक्रमण और अत्याचार नहीं हो सकता। आज बहुत अतिक्रमण होता है। मनुष्य चाहे जैसे उनके साथ व्यवहार करता है। क्या मनुष्य ने कभी ध्यान दिया कि आवश्यकता से ज्यादा वनस्पति को नहीं काटना चाहिए? आदमी एक काम करने के लिए कुछ नीम पत्तियां तोड़नी हैं तो पूरी शाखा क्यों तोड़ें? क्या यह उन जीवों के प्रति अतिक्रमण नहीं है, अन्याय नहीं है? क्या मनुष्य ने यह सोचा—पानी से हाथ धोना है, एक गिलास पानी से काम चल सकता है, पर वहां कई लोटे पानी क्यों गंवा देते हैं? स्नान करने में एक वाल्टी पानी पर्याप्त है फिर भी नल को खोलकर घंटों तक अनावश्यक पानी क्यों बहा देते हैं? क्या यह अतिक्रमण नहीं है? यदि ये प्रश्न मनुष्य के मस्तिष्क में उभरने लगे तो क्या पर्यावरण की समस्या के समाधान की दिशा में प्रस्थान न हो जाए?

अहिंसा का वैज्ञानिक महत्व

जैन धर्म के अनुसार अहिंसा एक मुख्य आचार है। उसका आध्यात्मिक मूल्य तो है ही पर आज विज्ञान ने भी इस सिद्धान्त पर उपयोगिता की मुहर लगा दी है। आज अहिंसा का अर्थ केवल पारलौकिक ही नहीं रह गया है अपितु प्रत्यक्ष जीवन के साथ भी उसका गहरा अर्थ समझ में आने लगा है। जैन धर्म जीवन का अस्तित्व केवल आदमियों, पशुओं या कीड़ों-मकोड़ों में ही नहीं मानता अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा तथा वनस्पति—इन पंचभूतों में भी उसका अस्तित्व स्वीकार करता है। इसलिए स्थावर—स्थिर रहने वाले सूक्ष्म

जीव की हिंसा से बचने के लिए जैन धर्म ने गहरा विचार किया है। जैन आगम ग्रन्थों में पृथ्वीकाय, अप्काय आदि पांच स्थावर जीवों के बारे में बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। वे जीव किस तरह आहार ग्रहण करते हैं, किस तरह श्वासोच्छ्वास लेते हैं, उनके पास कैसा शरीर है, कितनी इन्द्रियां हैं, उनमें कितने प्राण हैं आदि प्रश्नों पर बहुत गहराई से विचार किया गया है।

इतना तो स्पष्ट है कि आज विज्ञान भी पृथ्वी आदि भूतों के उपयोग के बारे में जिस दृष्टि से विचार करने लगा है उससे अहिंसा मान्यता को एक नया आयाम मिला है। धर्म जहां प्राणविनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहां विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार कर रहा है। जैन धर्म जहां प्राणिमात्र की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहां विज्ञान केवल मनुष्य की दृष्टि से विचार करता है। पर फिर भी परिणाम की दृष्टि से दोनों एक ही केन्द्र पर आकर मिल जाते हैं।

प्रदूषण शब्द से आज सभी परिचित हैं, अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (1966) के अनुसार वायु, पानी, मिट्टी, पौधे, पेड़ और जानवर— सभी मिलकर पर्यावरण अथवा वातावरण की रचना करते हैं। ये सभी घटक पारस्परिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, जिसे 'परिस्थिति-विज्ञान सम्बन्धी सन्तुलन' कहते हैं। जब एक सीमा से अधिक विकास के लिए प्रकृति का उपयोग किया जाता है तो हमारे पर्यावरण या वातावरण में कुछ परिवर्तन होता है, अगर इन परिवर्तनों की प्रक्रिया की प्रकृति के साथ सामंजस्य नहीं किया जाता और परिस्थिति-विज्ञान सम्बन्धी सन्तुलन को बनाये नहीं रखा जाता, तो उससे न केवल विकास-व्यय के बढ़ने का खतरा पैदा होता है, बल्कि उससे ऐसा असन्तुलन पैदा हो सकता है जिससे पृथ्वी पर मनुष्य-जीवन खतरे में पड़ सकता है। यही असन्तुलन प्रदूषण पैदा करता है।

पृथ्वीकाय की अहिंसा का प्रदूषण

भगवान् महावीर ने कहा है— 'तं परिणाय मेहावी नेव सयं पुढवि-सत्थं समारंभेज्जा नेवण्णेहिं पुढवि-सत्थं समारंभावेज्जा, नेवण्णे पुढवि-सत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा'— आचारांग: 1-34। मेधावी पुरुष हिंसा के परिणाम को जानकर स्वयं पृथ्वी शस्त्र का समारंभ न करें, दूसरों से उसका समारंभ न करवायें, उसका समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करें।

जमिणं विरुवेरुवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्मसमारंभेणं पुढवि—सत्थं समारंभेमाणे अण्णेवेणेगरुवे पाणे विहंसई—आचारांग: 1-27। नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी सम्बन्धी क्रिया में व्याप्त होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करने वाला व्यक्ति (न केवल उन पृथ्वीकायिक जीवों की ही हिंसा करता है, अपितु) नाना प्रकार के अन्य जीवों की भी हिंसा करता है।

उपरोक्त उद्धरणों में महावीर ने पृथ्वीकाय की हिंसा का निषेध किया है। आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए— खासकर पत्थर के कोयले के लिए— पृथ्वी का जबरदस्त

दोहन किया जा रहा है। भूवैज्ञानिकों ने आशंका प्रकट की है कि यदि इसी प्रकार खनिज पदार्थों का उपयोग किया गया तो कुछ ही वर्षों में उसके भंडार निःशेष हो जायेंगे। दुनिया में जब से औद्योगीकरण की लहर आयी है तब से ही पत्थर के कोयले के जलने से उसकी धूल, कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड तथा कुछ ऑर्गनिक गैसों के रूप में प्रदूषणकारी पदार्थों की भरमार हो गयी है। बड़े शहरों तथा कारखानों के आसपास इसका प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा है। इस पृथ्वीकाय की हिंसा केवल पृथ्वीकाय की हिंसा ही नहीं है अपितु उसके साथ वातावरण का संतुलन भी गहरे अर्थ में प्रभावित होगा। भगवान् महावीर ने कहा है— 'जम्मेते पुढावि कम्मं समारंभा परिणाता भवति, सेहु मुणि परिणात कम्मे'— जिसके पृथ्वी सम्बन्धी कर्म समारंभ परिज्ञात हो जाते हैं वह उस हिंसा से निवृत्त हो जाता है।

पशु-पक्षी कीड़े-मकोड़े आदि तथा पृथ्वी, पानी, अग्नि हवा तथा वनस्पति के स्थावर जीवों के साथ एकता साधना ही अहिंसा की ही समुपासना है। विश्व में जो कुछ है उसे उसी तरह रहने देना, उसके साथ छेड़-छाड़ न करना अहिंसा है। विश्व की संरचना एक ऐसा परस्पराधारित तानाबाना है कि एक तार को छूने से पूरा ब्रह्माण्ड झनझना उठता है। ऐसी स्थिति में एक का वध करने से दूसरा जीव-वंश स्वयं ही नष्ट हो जाता है। संसार में पाई जाने वाली समस्त जीवित तथा अजीवित वस्तुएं आपस में उसी प्रकार जुड़ी हुई हैं जिस प्रकार माला के मोती। भगवान् महावीर ने कहा है - "सर्वं सर्वेण सम्बद्धम्।" अर्थात् सब एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं।

पृथ्वी के बेहिसाब उत्खनन की समस्याएं आज स्पष्ट हैं। पर्यावरण की दृष्टि से पृथ्वी के ऊपर की मिट्टी की परत बहुत कीमती है। एक से.मी. मोटी परत के बनने में लगभग 400 वर्ष लग जाते हैं। एक-एक कण के जमने से इस परत का निर्माण होता है। मनुष्य के एक ही झटके से यह परत इतनी क्षतिग्रस्त हो जाती है जिसकी पूर्ति लाखों वर्षों बाद ही संभव हो सकती है। कई जगह पहाड़ों के उत्खनन से पानी का प्रवाह इतना विपर्यस्त हो जाता है कि बहुत सारी कीमती जमीन को नदियां लील जाती हैं। उससे जो प्राकृतिक विनाश हो जाता है। उसे आंकना बड़ा मुश्किल है।

जल-प्रदूषण

पानी भी एक सजीव तत्व है। एक तो वह स्वयं सजीव तत्व है, उसमें अप्काय के स्थावर जीव पाये जाते हैं, तथा दूसरे उसके आश्रय में वनस्पतिकाय के स्थावर तथा त्रसकाय के द्वीन्द्रिय आदि जीव पलते हैं। जल-प्रदूषण से अप्काय की हिंसा तो होती ही है पर वनस्पति, द्वीन्द्रिय प्राणी, मछलियों, यहां तक कि उसका प्रदूषण मनुष्य को भी प्रभावित करता है। यों देखा जाय तो वायु के बाद मनुष्य के लिए पानी की सबसे ज्यादा आवश्यकता है। पानी में मनुष्य का मल फेंकने से भी उसमें भयंकर प्रदूषण पैदा होता है। 'सेन्ट्रल बोर्ड फॉर प्रिवेंशन एण्ड कंट्रोल ऑफ वाटर सोल्युशन' के अध्यक्ष ने कहा था— प्रतिदिन दिल्ली में यमुना में दस करोड़ लीटर मल निर्यात होता है, जबकि उसमें दो करोड़ लीटर कचरा भी उद्योगों द्वारा छोड़ा जाता है।

जीवन के लिए प्राणवायु एक अत्यन्त आवश्यक शर्त है। हमारी पृथ्वी पर 50 से 70 प्रतिशत प्राणवायु का उत्पादन पानी में पैदा होने वाली सूक्ष्म वनस्पति फायटोप्लैक्शन से होता है। वह सूर्य से प्रकाश-संश्लेषण कर पानी में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन को विभक्त करती है। इस प्रकार पानी हमारी दुनिया के जीवन का एक मुख्य स्रोत है। पर आज उसमें भयंकर प्रदूषण पैदा हो रहा है।

कारखानों में पानी का भारी मात्रा में प्रयोग होता है। जब वह पानी रासायनिक क्रियाओं से गुजरकर बाहर आता है तो इतना प्रदूषित हो जाता है कि मनुष्यों के क्या, जानवरों तक के भी पीने लायक नहीं रह जाता है। खासकर तालाबों और नदियों में इसका प्रभाव अधिक पड़ता है।

हाल ही के सर्वेक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ है कि प्रतिवर्ष लगभग दो लाख व्यक्ति जल-प्रदूषण से मर रहे हैं। अमेरिका की इरी झील, स्विट्जरलैंड तथा जर्मनी के सीमाप्रदेश स्थित ज्युरीच झील को भी भयंकर जल-प्रदूषण से होकर गुजरना पड़ा है।

इंग्लैंड में प्रतिदिन एक हजार मिलियन लीटर कचरा टेम्स नदी में फेंका जाता है। जर्मनी की राईन नदी में करोड़ों मछलियां प्रदूषित कचरे के कारण मर गयीं। स्विट्जरलैंड के जिनेव्हा सागर का पानी एक समय बड़ा स्वच्छ तथा शीतल था। पर आज यदि कोई उस पानी का उपयोग कर लेता है तो अनेक दुर्घर्ष रोगों से आक्रान्त हो जाता है। 1970 में अकेले अमेरिका ने 1.2 करोड़ टन सीसा पानी और हवा में छोड़ा था। इससे प्रशांत महासागर के मत्स्य भारी मात्रा में प्रभावित हुए। आयरलैंड के समुद्र में हजारों समुद्रपक्षी कीटनाशक पदार्थों, पॉलिक्लोरिनेट तथा बायफेजिल्स के कारण मर गये थे। इन पदार्थों का उद्योग-धन्धों में ही नहीं बल्कि सौन्दर्य-प्रसाधन तथा वानस्पतिक कीटाणुओं के नाश के लिए भी उपयोग होता है।

वास्तव में औद्योगिक विकास के लिए शहरों का विस्तार होना निश्चित है। ज्यों-ज्यों शहर बढ़ते हैं त्यों-त्यों प्रदूषण बढ़ना भी अनिवार्य है। मशीनीकरण जल तथा हवा के प्रदूषण का मुख्य अंग है। भिन्न-भिन्न प्रकार की भट्टियों में प्रयोग आने वाले पानी की वाष्प तथा धुएं से हवा में बहुत बड़ा प्रदूषण होता है तथा नदियों और तालाबों का पानी प्रदूषित हो जाता है।

यांत्रिक युग का यह अभिशाप धीरे-धीरे सारे संसार में फैलता जा रहा है। इससे मानवीय अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। विकसित देश तो उससे लड़ने के लिए कुछ साधन भी जुटा सकते हैं, पर विकासमान देशों के पास यह उपाय भी नहीं है। भारत में बम्बई जैसे शहरों में जल-प्रदूषण इतनी तीव्रता से बढ़ रहा है कि वहां के निकट समुद्र में स्नान करना भी खतरे से खाली नहीं है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि प्रदूषण की यही गति रही तो एक दिन समुद्र भी प्रदूषित हो जाने वाले हैं। क्योंकि पानी का प्रदूषण चाहे तालाब में हो, चाहे नदी में, अन्ततः वह समुद्र में ही मिलने वाला है तथा वह प्रदूषण मनुष्य को ही प्रभावित करने वाला है। क्योंकि एक ओर उससे प्राणवायु के उत्पादन का सन्तुलन बिगड़ जायेगा तो दूसरी ओर

जलजीवों में संग्रहीत विषाणु भिन्न-भिन्न रूपों में फिर मनुष्य तक पहुंच जायेंगे। इसलिए भगवान् महावीर ने कहा है— 'तंसे अहियाए तंसे अबोहिये'— जल की यह हिंसा मनुष्य के अहित तथा अबोधि का कारण है।

ईंधन तथा वायु का प्रदूषण

वायु का प्रदूषण आज के युग की एक ज्वलंत समस्या है। वातावरण हमारे परिसर का एक प्रमुख अंग है। उचित प्रमाण में मिली हुई हवा का यह आवरण हमारी पृथ्वी को लपेटे हुए नहीं होता तो इसकी भी वही स्थिति होती जो आज अन्य ग्रहों की है।

वायुमण्डलीय प्रदूषण का एक गंभीर पक्ष हाल में ही सामने आया है। ऊपरी वायुमंडल की ओजोन परत को नाइट्रोजन के ऑक्साइडों से चोट पहुंचने का खतरा उत्पन्न हो गया है। ओजोन परत के किसी भी रूप में दुर्घटनाग्रस्त होने से पृथ्वी पर जीवधारियों का जीवन ही खतरे में पड़ जायेगा। पृथ्वी पर ऑक्सीजन का स्रोत ओजोन ही है। साथ ही पृथ्वी पर सूर्य को प्रकाश से पराबैंगनी विकिरणों को रोकने का अथवा सोखने का काम भी यह परत करती है। यदि ये विकिरण पृथ्वी पर सीधे पहुंच जाएं तो त्वचा का कैंसर, आंखों के रोग आदि हो सकते हैं। वातावरण की शुद्ध हवा ने यहां प्राणियों को जीवन का आधार प्रदान कर रखा है। पर मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं के लिए तीव्रता से उसे दूषित करना शुरू कर दिया है। उद्योग-धंधों के अमर्यादित विस्तार तथा यातायात के द्रुत साधनों के विकास के कारण जो कचरा तथा अनावश्यक पदार्थ जल, स्थल तथा हवा में छोड़े जाते हैं, उनसे सारा वातावरण झपाटे के साथ प्रदूषित होता जा रहा है। यदि इस पर नियन्त्रण नहीं किया गया तो थोड़े दशकों के पश्चात् ही इस ग्रह पर मानवजाति के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो जावेगा— ऐसा वैज्ञानिकों का अभिमत है।

सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हुआ है कि पिछले सौ वर्षों में वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में 16 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो चुकी है, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अगर कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा हमारे वातावरण में निरन्तर बढ़ती रही तो मनुष्य एवं जानवरों के शरीर हेतु आवश्यक प्राणवायु का अनुपात घट जायेगा। घटते अनुपात के कारण शहरी प्रभागों व महानगरीय इलाकों में लोगों में श्वास-रोग और नेत्र-रक्तिमता बढ़ रही है। आज स्थिति यह है कि वायुमण्डल में सन् 1870 की अपेक्षा ग्यारह प्रतिशत कार्बन डाई-ऑक्साइड अधिक है।

दूषित हवा का खतरा

कार्बन डाई-ऑक्साइड बढ़ने सम्बन्धी चिन्ता का पहलू एक और भी है। संयुक्त राष्ट्र संघ की पर्यावरण सम्बन्धी एक संस्था 'यूनेप' के पिछले बीस वर्षों के एक अध्ययन के अनुसार पृथ्वी की कुल पैदा होने वाली कार्बन डाई-ऑक्साइड को कार्बन-चक्र में लाने की क्षमता कम पड़ती जा रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि कार्बन-डाईऑक्साइड की मात्रा जो पेड़ों, समुद्रों, जीवधारियों आदि में पुनः सोखी न जा सके वह बढ़ती जा रही है। यदि स्थिति यही रही और

कार्बन-डाईऑक्साइड भी इसी दर पर ईंधन आदि के जलने से वायुमण्डल में छोड़ी जाती रही तो अगले सौ साल में पृथ्वी पर कार्बन-डाईऑक्साइड की मात्रा पहले से दुगुनी हो जायेगी ।

नैसर्गिक शुद्ध हवा का प्रदूषण मुख्यतः ईंधन के जलने तथा विविध औद्योगिक प्रक्रियाओं से हवा में छोड़े जाने वाले पदार्थों के कारण होता है । कारखाने से निकलने वाले धुएं में हवा को प्रदूषित करने वाले दो पदार्थ होते हैं— एक तो धूल तथा दूसरा सल्फर डाईऑक्साइड । कुछ अन्य प्रकार के प्रदूषण भी उसमें उत्पन्न होते हैं पर उनका प्रमाण अत्यन्त अल्प होता है । पत्थर के कोयले तथा खनिज तेलों के रूप में जो ईंधन काम के लिए आता है उसमें एक से तीन प्रतिशत से कुछ अधिक गंधक होता है । एक हजार किलोग्राम ईंधन के जलने में वातावरण से लगभग साठ किलोग्राम सल्फर डाईऑक्साइड छोड़ा जाता है । इस तरह हजारों किलो प्रदूषक आज वातावरण में छोड़ा जा रहा है ।

ऐसा कहा जाता है कि सतत के कोलाहल से होने वाला ध्वनि-प्रदूषण मनुष्य के लिए मृत्यु का एक छोटा एजेंट है तथा वायु-प्रदूषण बड़ा एजेंट ।

40 से 60 प्रतिशत हवा का प्रदूषण अकेले स्वचलित वाहनों से निकलने वाले दूषित पदार्थों से होता है । शेष प्रदूषण कोयला जलानेवाले कारखानों से निकलने वाली गंधकीय भाप, दावानल तथा अन्य गैसों जैसे कार्बन मोनोऑक्साइड जो वायुमंडल में 0.1 पी.पी.एम. होती है; मगर कारों, ट्रकों एवं इंजिन आदि से निकलने वाले धुएं से इसकी सान्द्रता 150 से 350 पी.पी.एम. तक भी पहुंच जाती है । यह श्वसन-क्रिया द्वारा शरीर में पहुंच कर रक्त की लाल रुधिर कणिकाओं की ऑक्सीजन परिसंचरणक्षमता कम कर देती है, जिससे मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है । इसकी 100 पी.पी.एम. सान्द्रता होने पर हमें चक्कर, सिरदर्द व घबराहट अनुभव होती है तथा करीब 1000 पी.पी.एम. पर मृत्यु ।

ईंधनों के जलने से प्राप्त होने वाली गैसों में नाइट्रोजन भी प्रमुख है जो कि ऑक्सीजन से संयोग कर ऑक्साइड बनाती है । इनमें प्रमुख नाइट्रोजन पर आक्साइड, नाइट्रोजन डाईऑक्साइड तथा नाइट्रोजन मोनोऑक्साइड है, जिनसे खांसी तथा फेफड़ों के रोग उत्पन्न होते हैं । ये ऑक्साइड जल के साथ अम्लीय स्थिति उत्पन्न करते हैं । नाइट्रोजन के ऑक्साइड का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रदूषक प्रभाव 'स्मॉग' के रूप में होता है । 'स्मॉग' शब्द 'स्मोक' (धुआ) और 'फोग' (कोहरा) के मिलने से बनता है । 'स्मॉग' में जल-वाष्प और धूल के कणवायु में स्थिर होकर घना आवरण बना देते हैं जो भूमि के समीप स्तरों में पहुंच जाता है जिससे प्राणियों को भारी नुकसान होता है । सल्फर डाईऑक्साइड गैस भी कोयले एवं तेल के दहन से उत्पन्न होती है । वायु में पहुंचने पर यह गैस वर्षा या नमी के साथ धुलकर पृथ्वी पर पहुंचती है व गंधक का अम्ल बनाती है जो कि नाक में जलन उत्पन्न करता है तथा फेफड़ों को भी प्रभावित करता है ।

कारखानों, मोटरकार आदि के धुओं में कार्बन डाईऑक्साइड ही नहीं; धातुओं के कण, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, धूल जैसे हानिकारक

पदार्थ होते हैं। धातु-कणों में सीसा, पारा, निकल, क्रोमियम तांबा, कैडमियम आदि धातु होते हैं। पश्चिमी जर्मनी में हुए एक अनुसंधान के अनुसार मोटरकारों द्वारा छोड़े गए धुएँ में व आसपास के वातावरण में पाये जानेवाले सीसे की मात्रा में सीधा सम्बन्ध है। एक अनुमान के अनुसार कारें लगभग 5 लाख टन सीसा प्रतिवर्ष वायुमंडल में छोड़ती हैं। सीसे के जहर से मानव-मस्तिष्क तन्तु नष्ट हो जाते हैं। निकल, क्रोमियम, मैंगनीज जैसी धातुओं को सांस में लिये जानं से फेफड़ों की बीमारियां व कैंसर तक हो सकता है।

पारा जैसी विषाक्त धातु जो पूरे स्नायु-तंत्र को नष्ट करने की क्षमता रखती है— उसका प्रसार भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में भी बढ़ता जा रहा है। एक राष्ट्रीय अध्ययन के अनुसार भारत के वायुमंडल में भी हर वर्ष 180 टन पारा डाला जा रहा है। इसमें से 166 टन पारा केवल कास्टिक सोडा पैदा करने वाले कारखानों द्वारा ही वायुमंडल में छोड़ा जा रहा है।

चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से यह सिद्ध हो चुका है कि दमा, कफ-वृद्धि आदि फेफड़ों की बीमारियों की वायु-प्रदूषण से वृद्धि होती है। इससे आंखों की रोशनी धुंधली होती है। फेफड़ों का कैंसर तथा रक्तवाहिनी व धमनियों में कड़ापन आना भी हवा की प्रदूषिता से संभाव्य है। इससे पुरानी बीमारियों में तो वृद्धि होती ही है, पर अमेरिकन पब्लिक हेल्थ एसोसिएशन के अध्ययन के अनुसार यह स्पष्ट हो चुका है कि ऐसे वातावरण में पांच लाख बच्चों को दमा का असर दुगुना दिखाई दिया है तथा त्वचा-रोग का प्रमाण चार गुना ज्यादा दिखाई दिया है।

एक व्यक्ति पूरे साल में जितनी ऑक्सीजन का उपयोग करता है, उतनी ही ऑक्सीजन एक टन कोयला जलने में नष्ट हो जाती है। इतनी ही ऑक्सीजन एक मोटरगाड़ी एक हजार किलोमीटर दौड़कर खत्म कर देती है। एक हवाई जहाज करीब दो हजार किलोमीटर यात्रा में करीब 100 टन ऑक्सीजन खर्च करता है।

यदि औद्योगिक इकाइयों में कोयले का जलाया जाना वर्तमान ढंग से जारी रहा और उचित प्रदूषण नियन्त्रण उपाय नहीं अपनाये गए तो भारत में दस वर्ष में तेजाबी वर्षा होने लगेगी।

वायुमंडल में जो कुछ प्रदूषण होता है उसमें से कुछ अंश बरसात के माध्यम से जमीन पर नदी-नालों में भी पहुंच जाता है। जमीन व पानी पर प्रदूषण का एक नया व खतरनाक चक्र प्रारम्भ हो जाता है। कुछ पेड़-पौधे, अनाज जैसे गेहूं, चावल आदि प्रदूषित जमीन से विषैले तत्व, धातु आदि आत्मसात कर लेते हैं जो भोजन के रूप में आदमी के शरीर में पहुंच जाते हैं। चरते हुए दुधारू जानवरों में भी घास के साथ प्रदूषण पहुंच जाता है।

श्री जैदी ने पालिमरों एवं एसबेस्टोस धातु सं नदियों के जल और वायु-प्रदूषण के खतरों से उभरती समस्याओं की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया।

जलवायु-विशेषज्ञों के विश्व-सम्मेलन में यह बात इस दृष्टि से प्रस्तुत की जा रही है कि किस प्रकार एक देश के क्रियाकलाप उस देश की सीमा को लांघकर अन्य देशों को भी

प्रभावित करते हैं। वास्तव में सारी दुनिया एक सामाजिक व्यवस्था के अधीन जी रही है। कोई भी देश या व्यक्ति उसमें अवरोध करता है तो वह केवल उस तक ही सीमित नहीं रहता है, अपितु समस्त दुनिया को प्रभावित करता है।

ऐसी स्थिति में अग्नि प्रसंग में आचारांग सूत्र 9-66 में उल्लेखित इस छोटे-से पाठ का अपना कितना महत्व है, जरा इसे देखे— 'जे लोग अम्भाईक्खई से अत्ताणं अम्भाईक्खई'— जो (अग्निकाय) लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है वह अपनी आत्मा को अस्वीकार करता है। वास्तव में अग्नि के जीवों को पीड़ित करना अपने आपको ही उत्पीड़ित करना है। इसीलिए आगे कहा गया है— 'जे दीह लोय सत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयण्णे। जे असत्थस्स खेयण्णे, से दीह लोग सत्थस्स खेयण्णे— आचा.9-67। अर्थात् जो अग्निशास्त्र के स्वरूप को जानता है वह स्वयं को जानता है। जो स्वयं को जानता है वह अग्निशास्त्र के स्वरूप को जानता है। निश्चय ही अग्निकाय की इस विनाशलीला को समझने वाले व्यक्ति में अपने आप संयम प्रतिफलित हो जाता है। जिसमें संयम प्रतिफलित नहीं होता है वह वास्तव में इस विनाशलीला को जानते हुए भी अनजान है।

यद्यपि आज प्रदूषण सर्भी जगह अपने पांव फैलाने लंगा है पर भारत में यह अभी तक उतना नहीं फैला है जितना अमेरिका, जापान आदि देशों में। एनई.एफ.आर.आई. के डायरेक्टर जे.एम. दवे की रिपोर्ट के अनुसार भारत के नौ शहर इस दिशा में तेजी से बढ़ रहे हैं। इसका प्रभाव शहरों के लोगों को तो भोगना ही पड़ता है, पर जाने-अनजाने शेष लोग भी उसके चंगुल में फंसते ही हैं। फिर भी यहां का वातावरण अभी तक बहुत ज्यादा प्रदूषित नहीं हुआ है। इसका कारण— 'संत-महात्माओं की शिक्षा के कारण भारत के लोग निजी भोगवृत्ति में नहीं पलते हैं। इसीलिए भारतीयों के शरीर, मन और आत्माओं में एक अतुलनीय सन्तुलन दृष्टिगोचर होता है।'

हो सकता है कुछ लोगों को इस कथन में पिछड़ेपन की गंध आती हो, पर उन्हें इस समाचार पर भी ध्यान देना चाहिए कि जापान के बड़े-बड़े नगरों में यातायात को नियोजन करने वाले पुलिसमैन को आधा-आधा घंटा बाद पास में रहे ऑक्सीजन की थैली में ऑक्सीजन लेना पड़ता है। यातायात के कारण वहां इतना प्रदूषण पैदा हो गया कि कई जगहों पर तो बच्चों को स्कूल जाते समय गैस-मास्क पहनना पड़ता है। वहां इस प्रदूषण को रोकने के लिए सप्ताह में एक दिन पेट्रोल से चलने वाले यातायात को बंद रखा जाता है।

आधुनिकीकरण की होड़ में बढ़ते हुए धूलकणों के कारण भी विश्वस्तर पर तापक्रम में अन्तर आया है। बढ़ते हुए धूलकणों से सूर्य का प्रकाश, सूर्य की ऊर्जा परावर्तित हो जाती है, बिखर जाती है, जिससे पृथ्वी ठंडी होती जा रही है।

औद्योगिकीकरण के नाम पर आज उद्योग-धंधों का अंधाधुंध विकास होता जा रहा है। इससे जो प्राकृतिक असंतुलन पैदा होता जा रहा है वह भी एक गहरी चिन्ता का विषय है। पेट्रोल की राजनीति और अर्थनीति ने तो दुनिया में एक असंतुलन पैदा किया पर इससे जो

प्राकृतिक असंतुलन पैदा हो रहा है वह बहुत ही खतरनाक है। आगे चलकर यह खतरा केवल औद्योगिक क्षेत्रों पर प्रगत देशों तक ही सीमित रह जाने वाला नहीं है अपितु इससे समूची जीवन-सृष्टि को ही क्षति पहुंच सकती है। इस दृष्टि से सौरशक्ति का उपयोग एक नयी आशा की किरण है। इसके उपयोग में सम्भवतः प्राचीन प्रदूषण से बचा जा सके पर यदि उद्योग-धंधों को चलाने के लिए इसका अतिशय उपयोग किया गया तो न जाने प्राकृतिक संतुलन पर कैसा प्रभाव पड़ने वाला है ?

ओजोन को खतरा

ओजोन को नष्ट करने वाली दो प्रमुख चीजें हैं— नाइट्रिक ऑक्साइड तथा क्लोरिन ऑक्साइड। अधिक ऊंचाई पर उड़ने वाले सुपरसोनिक जेट विमान नाइट्रिक ऑक्साइड पैदा करते हैं। उससे ओजोन को नुकसान पहुंचता है पर नाइट्रिक एसिड से भी ओजोन को ज्यादा खतरा है क्लोरिन ऑक्साइड से क्लोरिन ऑक्साइड का निर्माण फ्लुओरोकार्बन नामक रसायन से होता है। फ्लुओरोकार्बन प्राकृतिक रसायन नहीं है। इसे मनुष्य ने बनाया है। यह फ्लुओरिन और कार्बन का यौगिक है। यह उच्च तापमान को झेल सकता है अतः अत्यंत टिकाऊ है। इसीलिए अनेक उद्योगों में इसका व्यापक उपयोग होता है। रेफ्रीजेटरों तथा एयरकंडीशनरों में प्रयुक्त होने वाले द्रवों, एयरासील स्प्रे, ठोस प्लास्टिक फोमों के निर्माण में फ्लुओरो कार्बन के यौगिकों का उपयोग होता है। ये फ्लुओरोकार्बन वायुमंडल में पहुंचकर हवा के अन्य अणुओं के साथ मिलकर वायु में फैल जाते हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि ये 50 से 100 वर्ष तक नष्ट नहीं होते तथा धीरे-धीरे ऊपर समताप मंडल ओजोन तक पहुंच जाते हैं। वहां पैराबैंगनी किरणों के प्रभाव से इनके बंधन टूट जाते हैं और इस प्रक्रिया में क्लोरीन मुक्त परमाणु ओजोन के अणुओं को लगातार तोड़ते चले जाते हैं। यह क्रिया लम्बे समय तक चलती रहती है। वैज्ञानिक गणनाओं के अनुसार क्लोरीन का प्रत्येक परमाणु ओजोन के 100000 अणुओं को नष्ट करता है। इस तरह औद्योगीकरण के कारण समूची पृथ्वी पर भयंकर प्रदूषण फैल रहा है।

प्रदूषण का एक अन्य स्रोत है आणविक हथियारों का विस्फोट। सचमुच उससे होने वाली हानि के अकल्प्य परिणाम हो सकते हैं। इससे एक राष्ट्र का नुकसान नहीं है अपितु पूरे भूमंडल का परिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ जायेगा। पृथ्वी जीवन के लिए अयोग्य हो जायेगी। वायुमंडलीय तथा जीव-विज्ञान के अध्ययनों से यह सिद्ध हो गया है कि सीमित अणुयुद्ध से भी भयंकर गर्मी, विस्फोट और विकिरण के खतरे पैदा हो सकते हैं। हवा में कार्बन-डाईऑक्साइड गैस की वृद्धि से पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ सकता है। उससे अंटार्कटिक तथा आर्कटिक प्रदेशों की बर्फ पिघलकर समुद्र के पानी की सतह को बढ़ायेगी और समुद्र तट की बहुत सारी धरती जल समाधि ग्रहण कर लेगी। पहले तो वृक्ष-वन कार्बन डाईऑक्साइड को सोख लेते थे पर चूंकि अब वन भी नष्ट होते जा रहे हैं उससे गैसों के प्रलय प्रभाव से बचना असंभव हो गया है। इसका दूसरा खतरा शीत का प्रादुर्भाव भी है। उससे धरती अंधकारपूर्ण तथा अत्यंत शीतल ग्रह के रूप में परिणत हो जायेगी।

ऊपरी वायुमंडल में किए जाने वाले नाभिकीय विस्फोटों से बड़ी मात्रा में नाइट्रिक आक्साइड के अणु पैदा होते हैं। उसमें ओजोन की समूची जीवन-रक्षक परत का भी नष्ट हो जाना भी बहुत संभव है।

धूम्रपान: आत्महत्या या परहत्या

धूम्रपान से तैजस्काय की हिंसा तथा वायु-प्रदूषण तो होती है पर इससे भी आगे यह सोचना जरूरी है कि यह केवल पर-हिंसा ही है या आत्महत्या भी है? यद्यपि धूम्रपान करने वालों को आत्महत्या के अपराध में बन्दी नहीं बनाया जा सकता पर ब्रिटिश मेडिकल सर्जन्स 25 अगस्त 1974 की रिपोर्ट से पता चलता है कि वहां के अस्पतालों को आठ हजार चारपाइयां सिगरेट के हानिकारक प्रभाव वाले रोगियों से भरी पड़ी है। इन पर ढाई करोड़ पाँड का वार्षिक व्यय आ रहा है। वहां 1974 में 37000 व्यक्ति इस रोग के कारण मृत्युशैया पर सो गये। अमेरिका में 1962 में 41000 लोगों की धूम्रपान के कारण मृत्यु हुई।

वैज्ञानिक विश्लेषण से पता चलता है कि तम्बाकू में चार पदार्थ मानव के लिए विष का काम करते हैं—(1) निकोटीन (2) कोल्टा (3) आर्सेनिक, (4) कार्बन मोनो-ऑक्साइड। इनसे मानव शरीर पर धीमी मृत्यु की-सी प्रतिक्रिया होती है। निकोटीन के प्रभाव से व्यक्ति में चिड़चिड़ापन आता है। आंखों में रक्ताभिसरण कम हो जाने से दृष्टि कमजोर हो जाती है। हृदय की धड़कन तथा रक्तचाप बढ़ जाता है। अघेड़ लोगों की हृदय गति बन्द होने तक की आशंका बनी रहती है। त्वचा का रक्तस्राव 4 अंश फारेनहाइट तक कम हो जाता है। शिरायें संकुचित हो जाती हैं। अतः हृदय की खून की सप्लाई में कमी आ जाती है। भूख मिट जाती है। आमाशय की आंते उत्तेजित हो जाती हैं, उनका रक्तप्रवाह धीमा पड़ जाता है। खून में लाल कणों की कमी आ जाने से उसकी ऑक्सीजन वहन करने की शक्ति घट जाती है, परिणामतः सांस फूलने लगता है। गले की नली में तथा पुरुषों के मूत्राशय और जीभ में कैंसर हो जाता है। हृदय की कोई धमनी की बीमारी से मृत्यु तक हो सकती है।

1962 में प्रो. लूथर एस. टेरी की अध्यक्षता में गठित डॉक्टरों तथा-प्रोफेसरों की एक समिति ने चौदह महीनों के वैज्ञानिक अन्वेषण के बाद अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा था—सिगरेट पीने वाले पुरुषों की मृत्यु-संख्या 70 प्रतिशत पायी गयी है। श्री लूथर ने विशेष रूप से लिखा है—मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि धूम्रपान से मनुष्यों की मृत्यु का संकट बढ़ता जा रहा है, इसलिए इसे रोकने के लिए सरकारी स्वास्थ्य विभाग को ठोस कदम उठाना चाहिए।

अमेरिका के एक डॉक्टर ने बताया है—कैंसर से मरने वालों में सिगरेट पीने वालों की संख्या सिगरेट न पीने वालों की संख्या से 27 गुणा अधिक थी।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक डॉ. एच.एस. के अनुसार धूम्रपान से आंखें कमजोर हो जाती हैं।

भारतीय दमा और श्वसनीय शोध फाउण्डेशन के अन्तर्गत आयोजित व्याख्यानमाला में उन्होंने कहा— 'यदि माता या पिता अथवा दोनों ही धूम्रपान करते हैं तो उनके एक वर्ष तक की उम्र के बच्चे की छाती में गंभीर रोग होने की सम्भावना रहती है। ऐसी भी सम्भावना है कि सिगरेट पीनेवाली महिलाओं के मृत बच्चा पैदा हो या होने के बाद शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाय।'

जिनेवा के विशेषज्ञों के एक दल ने सिगरेट से महिलाओं पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए कहा है— "धूम्रपान करने वाली माताओं के गर्भपात की तथा जल्दी रजस्त्राव बन्द होने की आशंका अधिक रहती है। उनके नवजात शिशु का वजन ढाई सौ ग्राम तक कम होने की सम्भावना है।"

प्रो. हिचकान आदि की सम्मति है कि शराब आदि मादक द्रव्यों की अपेक्षा तम्बाकू से बुद्धि का ह्रास अधिक होता है। इसके समान इन्द्रिय-दौर्बल्य, बुद्धि तथा स्मरणशक्ति की हानि, चित्त की चंचलता और मस्तिष्क का रोग पैदा करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मादक पदार्थ वृहस्पति के समान असाधारण मनुष्य को भी बुद्धि भ्रष्ट कर उसे अपना दास बनाकर नचाते हैं, यह तो हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं।

तम्बाकू से होने वाली हानि को दृष्टिगत करते हुए प्रत्येक चिकित्सा-पद्धति इसका निषेध करती है। डॉ. फोवर्स विंसला पागलपन सम्बन्धी रोगों के विशेषज्ञ माने गए हैं। उन्होंने हजारों पागलों के निरीक्षण और उपचार के उपरांत अपने निष्कर्ष में बताया है— "यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं पागलपन के कारणों को इस क्रम से रखूंगा— पहला मद्य, दूसरा तम्बाकू और तीसरा आनुवंशिकता।"

अमेरिकन वनस्पति-विज्ञान के विशेषज्ञ लूथर पंक जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में जगत में प्रसिद्ध एवं प्रमाणिक विद्वान माने जाते हैं। उन्होंने अपने एक लेख में लिखा है— "मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि जिन कार्यों में एकाग्रता की आवश्यकता होती है उनमें नशीले पदार्थों का व्यवहार अवश्य ही हानिकारक सिद्ध हुआ है।"

अतएव धूम्रपान केवल आत्म-हत्या ही नहीं है वरन् धुंए एवं रासायनिक पदार्थों के पड़ने वाले दुष्प्रभावों से पर्यावरण भी प्रदूषित होता है तथा यह दूसरों के स्वास्थ्य के लिए जिम्मेवार है।

ध्वनि-प्रदूषण और वायुकायिक हिंसा

भगवान् महावीर ने कहा— 'जं सम्मति पासह तं मोणंति पासह' (आचा. 4-51)। जो सत्य को जानता है वही मौन को जानता है और जो मौन को जानता है वही सत्य को जानता है। सचमुच इस उक्ति में गहरा अर्थ भरा हुआ है। अधिकांश लोग शब्द-शक्ति को ही पहचानते हैं पर आज यह स्पष्ट हो गया है— शब्द या ध्वनि मनुष्य के लिए कितनी घातक हो सकती है। बोलने से मनुष्य की अपनी शक्ति तो क्षीण होती ही है पर ध्वनि का शस्त्र सरीखा प्रभाव होता है। इस स्फोटक ध्वनि से बड़े-बड़े पत्थरों को तोड़ा जा सकता है, तब बेचारे कान

के कोमल परदों की तो बात ही क्या है ? सचमुच ध्वनि-प्रदूषण आज के युग की एक गंभीर समस्या बन गया है। यातायात की खड़खड़ाहट, विमानों का कर्णभेदी स्वर, कल-कारखानों तथा तरह-तरह की मशीनों की निरन्तर घड़घड़ाहट, वातानुकूलित यंत्र तथा पंखे-रेफ्रिजरेटर का सूक्ष्म कम्पन, रेडियो से कोलाहल, घर के बर्तन आदि वस्तुओं का संघर्षण, परस्पर का वार्तालाप; स्कूल-कॉलेज, ऑफिस, सभा-सोसायटियों, जुलूसों का गगनभेदी घोष, भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्य-यंत्र, टेलिफोन-टाइपराइटर्स आदि की आवाज न जाने कितने प्रकार से हर क्षण हमारे कानों पर आक्रमण करती रहती है। यद्यपि प्राचीन काल में भी ध्वनि न थी ऐसा तो नहीं था पर शहरों में घनी आबादी तथा कल-कारखानों के बढ़ जाने से आज समस्या गम्भीर हो गयी है। प्रतिवर्ष दस प्रतिशत के हिसाब से बढ़ने वाली इस ध्वनि पर यदि नियंत्रण स्थापित नहीं हुआ तो वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि अगले कुछ वर्षों में बहरापन एक व्यापक रोग बन जायेगा।

कोलाहल से मृत्यु। यह एक हास्यास्पद कल्पना जैसी बात लगती है पर वह एक हृदय विदारक कटु-सत्य है। अमेरिका के वातावरण-संरक्षण विभाग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है— अकेले अमेरिका में तीव्र आवाज से चार करोड़ लोगों के आरोग्य को धक्का पहुंचा है। कार्यालयों या घरों में शान्त जीवन बिताने वाले अन्य चार करोड़ लोगों की कार्य-क्षमता में कमी आयी है। लगभग पच्चीस लाख लोग यंत्र प्रयोग के बिना कानों से सुनने में असमर्थ हो गये हैं।

असह्य ध्वनि का प्रभाव केवल कानों पर ही नहीं होता अपितु सारे शरीर पर पड़ता है। श्वसन-प्रणाली, पाचन-प्रणाली, जनन-क्षमता तथा मज्जा संस्थान पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं, मस्तिष्क तथा स्नायुओं—खासकर हाथ-पैरों की नाजुक रक्त वाहिनियों— पर तो इसका और भी अधिक प्रभाव पड़ता है। आंखों में घाव, सिरदर्द आदि बीमारियां भी इससे अस्तित्व में आ सकती हैं।

ध्वनि का सबसे अनिष्ट प्रभाव तो कदाचित् मज्जा संस्थान पर होता है। इससे निद्रानाश, चिड़चिड़ापन, नैराश्य आदि के रूप में मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाता है, जिसका अन्तिम परिणाम आत्महत्या तक हो सकता है। गर्भस्थ शिशुओं पर भी ध्वनि का तीव्र प्रभाव होता है।

वनस्पति प्रदूषण

महावीर के जीवन-दर्शन के बारे में कहा जाता है कि उनकी साधना बहुत कष्टमय है। महावीर जीवन को इस हद तक कसने की बात करते हैं कि जिससे उसका रस ही निचुड़ जाता है। पर महावीर का संयम पर बल देने का कारण भी अत्यन्त वैज्ञानिक है। उसे केवल आज के इकोलोजी (Ecology) के दृष्टिकोण से ही समझा जा सकता है। महावीर ने सूक्ष्माति-सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की अहिंसा पर भी उतना ही जोर दिया है, जितना कि वे मनुष्य की अहिंसा पर जोर देते हैं। इस दृष्टि से उन्होंने जीवन को पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति तथा त्रस— इन छह भेदों में बांटा है। यद्यपि थोड़े वर्षों पहले जीवन का यह विस्तार-विवेचन विज्ञान के

लिए स्वीकार्य नहीं था, आज भी हो सकता है कुछ अंशों में इसमें मतभेद हो, पर वनस्पति के जीवन के बारे में तो बिलकुल असंदिग्धता प्रकट हो गयी है। महावीर ने साधक के लिए वनस्पति की हिंसा का तीव्र विरोध किया है। इसका कारण यह नहीं था कि वे काया को संक्लेश देना चाहते थे, अपितु उनकी दृष्टि में वनस्पति के जीवों के प्रति एक बहुत गहरी संवेदना थी। आज वैज्ञानिकों में यह संवेदना अहिंसा की दृष्टि से तो नहीं उतरी है, पर प्रदूषण की दृष्टि से इस पर बहुत तीव्रता से विचार हो रहा है। पेड़-पौधों की अहिंसा उनके अपने लिए ही अनिवार्य नहीं हैं अपितु मनुष्य के लिए अपने स्वयं के जीवन के लिए भी अनिवार्य हैं।

अभी-अभी जोधपुर विश्वविद्यालय में वानस्पतिक प्रदूषण के सम्बन्ध में आयोजित एक गोष्ठी में बोलते हुए प्रो. जी.एम. जौहरी ने कहा था— पेड़-पौधों से ही पृथ्वी पर जीवन है। वनस्पति के बिना जैविक प्रक्रिया असम्भव है। जैविक संतुलन बनाए रखने के लिए पौध-संरक्षण आवश्यक है। सचमुच वनस्पति मनुष्य के लिए अनेक दृष्टियों से वरदान है। संसार में जितना प्राण वायु में है, उसका बहुत बड़ा भाग वनस्पति से ही उत्पन्न होता है। चूंकि मानव जीवन वनस्पति पर आधारित है, वही मनुष्य की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, उसका विनाश व्यक्ति का अपना स्वयं का विनाश है। इसीलिए आज प्राणवायु की दृष्टि से भी वनों की कटाई और पौधों को संरक्षण दिये जाने की आवश्यकता है। ईसा पूर्व की शताब्दियों में अनेक प्रकार के फल उपलब्ध होने के संकेत आज भी मिलते हैं। लेकिन संरक्षण के अभाव में लुप्त हो गये। निश्चय ही आज वनस्पति - सम्पदा का जिस तरह विनाश हो रहा है, वह एक चिन्ता का विषय है। पेड़-पौधों की लगभग 500 प्रजातियां नष्ट हो गयीं।

वनस्पति की अहिंसा का दूसरा पहलू है— वनों के कटने से प्राकृतिक संतुलन में विषमता। इस दुनिया में जितने भी पदार्थ हैं, वे हमारी धरती की बहुमूल्य सम्पदा हैं। इस दृष्टि से वृक्ष भी एक व्यक्ति की नहीं अपितु समस्त पृथ्वी की जीवनधारा से जुड़ी हुई प्राकृतिक उपलब्धि है। जब वन कट जाते हैं तो वर्षा का संतुलन बिगड़ जाता है। पहली बात तो यह है कि उससे वर्षा के प्रतिशतांक में भी गिरावट आती है। दूसरी बात यह है कि जंगलों के कट जाने से उनकी जल-संधारण की क्षमता कम हो जाती है। अतः पहाड़ कट जाते हैं। उससे दबकर मौतें होती हैं, वे तो होती ही हैं, पर पानी का प्राकृतिक बांध टूट जाने से बाढ़ का भी भयंकर खतरा पैदा हो जाता है। आज जो भयंकर बाढ़ें आती हैं, उनका एक मुख्य कारण वनों-जंगलों का काटना भी है। भूतल की जलरेखा निरन्तर नीचे जा रही है।

इसी प्रकार वनस्पति के विनाश से रेगिस्तान को जो विस्तार होता है, वह भी एक भयंकर समस्या है। भू-वैज्ञानिकों का मानना है कि भूमि की क्षमता से ज्यादा अगर उसका इस्तेमाल होता है तो उसके बड़े घातक परिणाम हो सकते हैं। शुष्क भूमि के संदर्भ में यह तथ्य जबकि वहां भूमि जल और प्राणियों का संतुलन संकटपूर्ण हो, विशेष रूप से लागू होता है। यह संतुलन जब भी बिगड़ता है, उससे उबरने में बहुत समय लगता है और खास तौर पर शुष्क क्षेत्रों में और ज्यादा समय लगता है।

आचारांग में भगवान् महावीर ने कहा है कि कोई साधक स्वयं वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से करवाता है या करने की अनुमति अनुमोदित करता है, वह हिंसा उसके स्वयं के लिए अहितकर होती है। आवश्यकता इसी बात की है कि हम महावीर की क्रान्त दृष्टि को युगीन संदर्भ में समझें और उसे एक नया अर्थ-बोध दे सकें।

धरातल से हरे आवरण के नष्ट होते जाने से मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में ह्रास हो रहा है। आयरलैंड के अलस्टरक्षेत्र के निवासियों की अपराधिक प्रवृत्ति के कारणों की खोज करने के लिए अमेरिकी सरकार ने एक आयोग गठित किया था तथा अमेरिका की अपराध अन्वेषण शाखा ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसमें लिखा था, यहां के निवासियों की हिंसात्मक प्रवृत्ति का कारण यहां की धरती का लगातार वन-विहीन होते जाना है। यह रिपोर्ट विश्व के कई वन-विहीन प्रदेशों के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर तैयार की गयी थी। रिपोर्ट में लिखा गया है कि वन-विहीन क्षेत्रों के निवासी बर्बर, क्रूर और हिंसक होते हैं, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे शारीरिक और मानसिक रूप से कई रोग पनपते हैं, शरीर की कोशिकाओं में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और अन्ततः इसका मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ता है तथा आदमी की प्रवृत्ति उग्र हो जाती है।

लेबनान के पर्वतों के बारे में यह बताया गया कि ये पर्वत आज से 5000 वर्ष पूर्व देवदार, चीड़, बांज और जूनिफर के जंगलों से ढके थे, किन्तु आज ये पर्वत सहारा रेगिस्तान की तरह नंगे, अन-उपजाऊ, वीरान पड़े हैं। इनका विनाश भी एक लम्बी कहानी से जुड़ा है। मिस्र के निवासियों ने इन जंगलों को इमारतों और जहाजों के निर्माण के लिए पूर्णतया धराशायी कर दिया। बचे हुए जंगलों को ब्रिटिश सैनिकों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रेल लाइनें बिछाने के लिए नष्ट कर दिया।

आज लेबनान में पर्यावरण ध्वंस होने से इतिहास पलटा खा रहा है। वहां का समकालीन इतिहास रक्त-रंजित है। वर्षों से चलता गृह-युद्ध, खून-खराबा—क्या यह दर्शाने के लिए काफी नहीं है कि वहां की वृक्ष-विहीन धरती ने लोगों में क्रूरता और बर्बरता के बीज बो दिये हैं।

वन हमारी प्राण-वायु के भण्डार हैं। एक आदमी को प्रतिदिन कम से कम 16 किलोग्राम ऑक्सीजन चाहिए और इतनी ऑक्सीजन पैदा करने के लिए 50 वर्ष की आयु और 50 टन वजन वाले पांच-छह वृक्ष होने चाहिए। दूसरे शब्दों में, पांच-छह पेड़ों को काट डालना अप्रत्यक्ष रूप में एक आदमी को प्राणवायु से वंचित कर देना है। वास्तव में दम घोटकर उसकी हत्या कर देना है।

वनस्पति जगत् और हम

मनुष्य और वनस्पति — दोनों हम-साथी हैं। वनस्पति के बिना मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं है किन्तु मनुष्य के बिना वनस्पति का जीवन सम्भव हो सकता है। हम आदिम युग को देखें, यौगलिक युग को देखें। उस समय जीवन की सारी आवश्यकताएं कल्पवृक्ष पर निर्भर थीं। वह प्रत्येक कल्पना को पूरा करने वाला वृक्ष था। यौगलिक जीवों की अपेक्षाएं— भोजन, वस्त्र आदि कल्पवृक्ष से पूरी होतीं। मकान, आभूषण, मनोरंजन के साधन,

श्रृंगार, साज-सज्जा, रहन-सहन, सब कुछ कल्पवृक्ष पर आश्रित था। कल्पवृक्ष के बिना यौगलिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यौगलिक युग के बाद मनुष्य के साथ रहना सीखा, गांव बसाना सीखा, मकान बनाना सीखा, खेती करना सीखा। पहले कल्पवृक्ष ही उनका मकान था। यौगलिक युग के अन्तिम समय में पहला मकान बना। मकान का नाम था अगार। पहला मकान लकड़ी से बना। अग — वृक्ष से बना इसलिए मकान का नाम अगार हो गया। उस समय न ईंटें थीं, न पत्थर थे। पूरा मकान लकड़ी से निर्मित हुआ।

जीवन का नया दौर

जीवन की आवश्यकताएं बढ़ी। मनुष्य ने कपड़े बनाना शुरू किया। पहला कपड़ा रूई से बना। उसका प्रणयन भी वनस्पति जगत् से आधृत था। खाने की पूर्ति का स्रोत भी वनस्पति जगत् था। उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य ने कृषि — खेती करना प्रारंभ कर दिया। एक अंतर आ गया — केवल कल्पवृक्ष पर जो निर्भरता थी, वह उससे हटकर वनस्पति जगत् पर निर्भर बन गई। प्रवृत्ति का विस्तार होता चला गया। मकान और वस्त्र बनने लगे, फसलें उगने लगीं। जीवन का एक नया दौर शुरू हो गया, किन्तु सब कुछ वनस्पति जगत् पर निर्भर बना रहा।

हम समाज के इतिहास को देखें। मनुष्य जगत् और वनस्पति जगत्-दोनों साथ-साथ जीते रहे हैं। मनुष्य पहले जंगलों में वृक्षों के बीच रहता था। आजकल अधिकांश लोग शहरों में रहना पसन्द करते हैं। हमने देखा — शहरों में बड़ी-बड़ी कोठियां बनी हुई हैं, किन्तु उनके चारों ओर छोटे-छोटे उद्यान लगे हुए हैं। प्रश्न हो सकता है — कोठी के सामने बगीचा क्यों? ऐसा लगता है — आदमी ने जंगल को छोड़ा, गांव बसाया। उसका गांव में मन नहीं लगा इसलिए उसे गांव में पुनः जंगल बनाना पड़ा।

प्राणशक्ति : मुख्य आधार

वस्तुतः पेड़ के बिना आदमी का मन ही नहीं लगता। एक व्यक्ति को कविता बनाना है। यदि पेड़ के नीचे बैठ जाए तो अपने आप कल्पना आने लग जाएगी। पेड़ के नीचे कागज़-कलम लेकर लिखना शुरू करें, कहानी बन जाएगी। जब हरा-भरा फल-फूलों से लदा हुआ वृक्ष आंखों को दिखाई देता है तो एक सूखा आदमी भी सजल बन जाता है, सरस बन जाता है।

वनस्पति हमारी प्राणशक्ति का मुख्य आधार है। किसी व्यक्ति को कुछ देर के लिए काल-कोठरी में बन्द कर दिया जाए तो उसका दम घुटने लग जाएगा। जब व्यक्ति प्रातःकाल उद्यान में भ्रमण के लिए जाता है, तब उसके तन, मन और भाव — सब स्वस्थ बन जाते हैं। मनुष्य जगत् और वनस्पति जगत् का इतना गहरा सम्बन्ध रहा है, फिर भी मनुष्य के मन में उसके प्रति करुणा का अभाव बना हुआ है। मनुष्य के मन में एक क्रूरता छिपी हुई है। जिस वनस्पति जगत् से वह इतना कुछ पा रहा है, उसके प्रति जो करुणा, कोमलता, सहृदयता, हमदर्दी और भाईचारा होना चाहिए, वह उसके मन में नहीं है। जो जीवन के साथी है, जीवन देने वाले हैं, उनके प्रति भी दयालुता नहीं है। यह एक विडम्बना है।

आत्मतुला

भगवान महावीर ने आत्मतुला के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। महावीर ने वनस्पति और मनुष्य की जो समानताएं प्रस्तुत की हैं, उन्हें आज विज्ञान प्रमाणित कर चुका है। महावीर की भाषा में मनुष्य और वनस्पति की समानता का रूप यह है—

मनुष्य	वनस्पति
मनुष्य जन्मता है	वनस्पति भी जन्मती है
मनुष्य बढ़ता है	वनस्पति भी बढ़ती है
मनुष्य चैतन्ययुक्त है	वनस्पति भी चैतन्ययुक्त है
मनुष्य छिन्न होने पर क्लान्त होता है	वनस्पति भी छिन्न होने पर क्लान्त होती है
मनुष्य आहार करता है	वनस्पति भी आहार करती है
मनुष्य अनित्य है	वनस्पति भी अनित्य है
मनुष्य अशाश्वत है	वनस्पति भी अशाश्वत है
मनुष्य उपचित और अपचित होता है	वनस्पति भी उपचित और अपचित होती है
मनुष्य विविध अवस्थाओं को प्राप्त होता है	वनस्पति भी विविध अवस्थाओं को प्राप्त होती है

अभय का अवदान

महावीर ने कहा — सब जीवों को अपने समान समझो। वनस्पति के संदर्भ में भी उनका यही प्रतिपादन था — 'तुम देखो! वनस्पति दूसरे जीवों की अपेक्षा तुम्हारे अधिक निकट है। पृथ्वी, अप, तेजस्, वायु आदि के जीवों को समझना कुछ कठिन है किन्तु वनस्पतिकाय को समझना आसान है। तुम इसे समझो, इस पर मनन करो। मनन कर अभय-दान दो।'

'जिससे तुम्हें जीवन मिल रहा है, उसे भी तुम भय दे रहे हो। तुम उसे सताना छोड़ दो। यह सत्य है — तुम्हारी आवश्यकताएं उस पर निर्भर हैं। तुम खाए बिना नहीं रह सकते किन्तु तुम कम से कम उसे अनावश्यक मत सताओ। मन में यह भावना रखो — यह हमारा उपकार करने वाला जगत् है। उसके प्रति तुम्हारा जो क्रूर व्यवहार होता है, उसके लिए क्षमा-याचना करो। तुम्हें आवश्यकतावश किसी पेड़ की टहनी को काटना पड़ा है, किसी वनस्पति को खाना पड़ा है तो तुम उसके प्रति मन में क्षमा-याचना करो। तुम्हारे मन में यह भाव जागे — विवशता के कारण मैं वनस्पति जगत् का उपयोग कर रहा हूँ। मेरी विवशता के लिए वह मुझे क्षमा करे। यह भाव कृतज्ञता का भाव होगा।'

रासायनिक दवाइयों से हानि

रासायनिक दवाइयों से भी पर्यावरण को बहुत खतरा है। उनसे एक बार तो अन्न के उत्पादन में वृद्धि होती है पर धीरे-धीरे न केवल अन्न उत्पादन में कमी होती है साथ ही जमीन का बंजर पन बढ़ता है इसी के साथ वह विष नाना रूपों में मनुष्य के लिए नुकसान देह बनता है। रासायनिक, खाद से जो कीड़े मर जाते हैं वास्तव में वे पर्यावरण के लिए बहुत कीमती

होते हैं। कीड़े फसल का नुकसान तो करते हैं पर वैज्ञानिकों का अभिमत है कि वे ज्यादा लाभ मनुष्य को देते हैं।

यह स्थावर जीवों की कहानी है। त्रस जीवों की हत्या के रूप में मांसाहार से प्रकृति का जो विनाश हो रहा है। वह भी पर्यावरण के लिए अत्यन्त घातक है।

हिंसा के दो प्रकार

भगवान महावीर ने हिंसा के दो प्रकार बतलाए — अर्थ-हिंसा और अनर्थ-हिंसा। यह बहुत वैज्ञानिक वर्गीकरण है। ये दोनों शब्द जीवन के व्यवहार से जुड़े हुए हैं। व्यक्ति आवश्यक हिंसा को नहीं छोड़ सकता, जीवन की वास्तविक जरूरतों को कम नहीं कर सकता, किन्तु अनावश्यक हिंसा से बच सकता है, कृत्रिम जरूरतों का संयम कर सकता है। अवास्तविक आवश्यकता और कृत्रिम जरूरतों का संयम कर सकता है। वास्तविक आवश्यकता और कृत्रिम आवश्यकता को समझना जरूरी है। प्राकृतिक चिकित्सा में दो प्रकार की भूख मानी जाती है — प्राकृतिक भूख और कृत्रिम भूख। प्राकृतिक भूख सहज लगने वाली भूख है। भस्मक रोग को कृत्रिम भूख माना गया है। जो व्यक्ति भस्मक रोग से ग्रस्त होता है, उसकी भूख दिन में सौ-सौ रोटियां खाने पर भी नहीं मिटती। इस कृत्रिम भूख — भस्मक व्याधि का कभी अन्त नहीं आता। वह व्यक्ति एवं समाज के लिए समस्या बन जाती है।

अर्थशास्त्र का सूत्र

आज के समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों ने कृत्रिम भूख को बढ़ाकर पूरे मानव समाज को संकट में डाल दिया है। अर्थशास्त्र का सूत्र है — इच्छा को बढ़ाते चले जाओ। आज इस गलत सूत्र के परिणाम स्वरूप हिंसा बढ़ रही है, पर्यावरण का संतुलन विनष्ट हो रहा है। आवश्यकता की पूर्ति करना जरूरी है, इस बात को उचित माना जा सकता है, किन्तु कृत्रिम आवश्यकताओं को पैदा करना और उनकी पूर्ति करते चले जाना युक्ति-संगत नहीं है। आवश्यकता की उत्पत्ति और उसकी पूर्ति का एक चक्र है। उस चक्र का कहीं अन्त नहीं होता। इस सच्चाई से साधारण लोग भी परिचित रहे हैं। राजस्थानी का प्रसिद्ध दोहा है —

तन की तृष्णा तनिक है, तीन पाव के सेर।

मन की तृष्णा अनन्त है, गिलै मेर का मेर ॥

प्रश्न आवश्यकता का

वर्तमान जगत् में जिस सच्चाई का प्रतिपादन किया जा रहा है, उससे यह सच्चाई भिन्न है। आवश्यकता की पूर्ति को अनुचित नहीं माना जा सकता, किन्तु प्रश्न है — मनुष्य की शारीरिक आवश्यकताएं कितनी हैं? वे बहुत सीमित हैं। यदि आवश्यकता के आधार पर चला जाता तो दुनिया के सामने पर्यावरण का संकट पैदा नहीं होता, पर्यावरण की समस्या से विश्व संतुलित नहीं होता। व्यक्ति ने तन की तृष्णा के स्थान पर मन की तृष्णा को बिठा दिया। जब मन की तृष्णा जाग जाती है तब आवश्यकताएं बढ़ती चली जाती हैं। तृष्णा और इच्छा का कोई अन्त नहीं है, कोई सीमा नहीं है। महावीर ने कहा — “इच्छा हु आगाससमा

अणंतिया” — इच्छा आकाश के समान अनंत है। जब इच्छा अनंत और असीम बन जाती है तब विनाश अवश्यंभावी बन जाता है।

विराम कहां होगा ?

अर्थशास्त्र का अभिमत है — जितनी इच्छा बढ़ेगी, उतना ही उत्पादन बढ़ेगा, जितना उत्पादन बढ़ेगा, उतनी ही समृद्धि बढ़ेगी। इस सिद्धांत ने सचमुच विनाश को निमंत्रण दे दिया है। अगर अर्थशास्त्र का यह सिद्धांत नहीं होता तो इकोलॉजी के विकास की जरूरत ही नहीं होती। आज सृष्टि-संतुलन के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं। लोग चाहते हैं — सृष्टि का संतुलन न गड़बड़ाए। किन्तु जब तक अर्थशास्त्र का यह सिद्धांत व्यक्ति के जीवन-व्यवहार को संचालित कर रहा है तब तक सृष्टि-संतुलन की चिन्ता को समाधान नहीं मिलेगा। सृष्टि-संतुलन के लिए, पर्यावरण के लिए अर्थशास्त्र की वर्तमान अवधारणाओं को बदलना होगा। उन्हें बदले बिना इन समस्याओं को समाहित नहीं किया जा सकता।

“इच्छा बढ़ाओ, उत्पादन बढ़ाओ”, इस गलत अवधारणा के कारण ही वनस्पति जगत् के साथ अन्याय हो रहा है। आज विकास के कृत्रिम साधनों ने प्रकृति के साथ अन्यायपूर्ण और क्रूर बरताव शुरू किया है। इसका विराम कहां होगा, कहा नहीं जा सकता।

महावीर का अहिंसा-दर्शन

हम इस सच्चाई को आचारांग सूत्र के संदर्भ में समझें। आचारांग सूत्र में जिन सच्चाइयों का उद्घाटन हुआ है, उन्हें वर्तमान में अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है। यही बात आज से हजार वर्ष पूर्व कही जाती तो समझने में कुछ कठिनाई होती। आज सारा विश्व उखड़ा हुआ है, समस्या से चिन्तित बना हुआ है। यदि आधुनिक संदर्भ में महावीर वाणी को प्रस्तुत किया जाए, आचारांग सूत्र का विश्लेषण किया जाए तो लगेगा — वर्तमान समस्याओं के अद्भूत समाधान पहली बार हमारे सामने आए हैं। आज महावीर की वाणी और उनका अहिंसा-दर्शन विश्व को लुभावना लग रहा है। लोग चाहते हैं — उफनते हुए दूध पर कोई ठण्डे पानी का छीटा देने वाला मिले। आज आकांक्षा की आग प्रबल बन रही है। उसे शान्त करने के लिए अहिंसा की बात, जो वनस्पति जगत् के साथ जुड़ी हुई है, ठण्डे पानी का छीटा डालने वाली बात है।

विषय : आवर्त

आचारांग सूत्र का एक महत्वपूर्ण सूक्त है — जे आवट्टे से गुणे, जे गुणे से आवट्टे— जो विषय है, वह आवर्त है, जो आवर्त है, वह विषय है। इन अर्थशास्त्रीय आकांक्षाओं या विषयों ने इतने आवर्त पैदा कर दिए हैं, इतने भंवर बना दिए हैं कि व्यक्ति का अपनी जीवन की नौका को खेकर पार पहुंचना, कठिन हो रहा है। इस भंवर से, आवर्त से बचने वाला ही समस्याओं के चक्रव्यूह को भेदने में सफल हो सकता है। यह इतनी-सी सच्चाई समझ में आ जाए तो मनुष्य-जाति का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

अहिंसा और शान्ति का अर्थशास्त्र

आधुनिक अर्थशास्त्र का उद्देश्य शान्ति नहीं है और अहिंसा भी नहीं है। उसका उद्देश्य है आर्थिक समृद्धि। प्रत्येक मनुष्य धनवान् बने, कोई गरीब न रहे, मनुष्य की प्राथमिक अनिवार्यताएं पूरी हों। इतना ही नहीं, वह साधन सम्पन्न बने। आर्थिक समृद्धि के लिए साधन के रूप में लाभ, इच्छा, आवश्यकता और उत्पादन बढ़ाने की बात भी स्वीकृत है।

कम्युनिज्म का उद्देश्य

कम्युनिज्म का उद्देश्य रहा सत्ता को हथियाना। जो निम्न वर्ग है, पिछड़ा या मजदूर वर्ग है, उसके हाथ में सत्ता आए। किन्तु कैसे आए, इसमें कोई विचार नहीं रहा, साधन-शुद्धि की कोई अनिवार्यता नहीं रही। अगर अच्छे साधन से आए तो अच्छी बात, किन्तु अच्छे साधन से न आए तो जैसे-तैसे सत्ता पर कब्जा किया जाए। अर्थशास्त्र में भी यही बात है। आर्थिक समृद्धि बढ़नी चाहिए। उसके लिए लाभ और स्पर्धा अनिवार्य मान लिए गए। जितना लोभ बढ़ेगा, अनिवार्यताएं बढ़ेगी, उतना उत्पादन बढ़ेगा, आर्थिक विकास होगा। जितनी स्पर्धा होगी, उतना ही आर्थिक विकास आगे बढ़ेगा। इस स्थिति में शान्ति और अहिंसा की बात गौण हो जाती है।

अर्थशास्त्र का उद्देश्य

यह स्वीकार करना चाहिए — अर्थशास्त्र के सामने शान्ति का प्रश्न मुख्य नहीं है, नैतिकता का प्रश्न भी मुख्य नहीं है। डॉ. मार्शल आदि कुछ उत्तरवर्ती अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि परिणामतः नैतिकता आनी चाहिए, किन्तु नैतिकता इसमें अनिवार्य नहीं है। केनिज ने कहा — 'जब हम आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो जाएंगे तो नैतिकता पर विचार करने का अवसर आएगा। अभी उसके लिए उचित समय नहीं है। अभी जो गलत है, वह भी हमारे लिए उपयोगी है।' अर्थशास्त्र उपयोगिता के आधार पर चलता है, इसलिए उसमें गलत कुछ भी नहीं है। जो उपयोगी है, वह सही है, वह हमारे लिए वांछनीय है।

गांधी का दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण आज के अर्थशास्त्र का है। प्रश्न है — महावीर का दृष्टिकोण क्या रहा? महावीर से पहले गांधी के दृष्टिकोण की चर्चा करें। महात्मा गांधी ने साम्यवाद के कुछ पहलुओं का विरोध किया। उद्योगवाद और केन्द्रवाद—इन दो पहलुओं का उन्होंने विशेष विरोध किया। उन्होंने कहा — 'सत्ता का केन्द्रीकरण और पूंजी का केन्द्रीकरण हिंसा को बढ़ाने वाला है। जहां-जहां सत्ता केन्द्रित होती है, पूंजी केन्द्रित होती है, वहां-वहां समस्याएं बढ़ती हैं।' गांधी की यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। जहां भी सत्ता और पूंजी का केन्द्रीकरण हुआ वहां हिंसा बढ़ी। गांधी ने एक और मार्मिक बात कही — 'हिंसा की नींव पर खड़ा कोई

भी शासन टिक नहीं सकता, साम्यवाद भी टिकेगा नहीं।' गांधी की कई दशक पहले की गई यह भविष्यवाणी सही निकली। हिंसा के आधार पर कोई वस्तु स्थायी नहीं हो सकती। इस आधार पर उन्होंने उद्योगवाद का विरोध किया।

उद्योगवाद का परिणाम

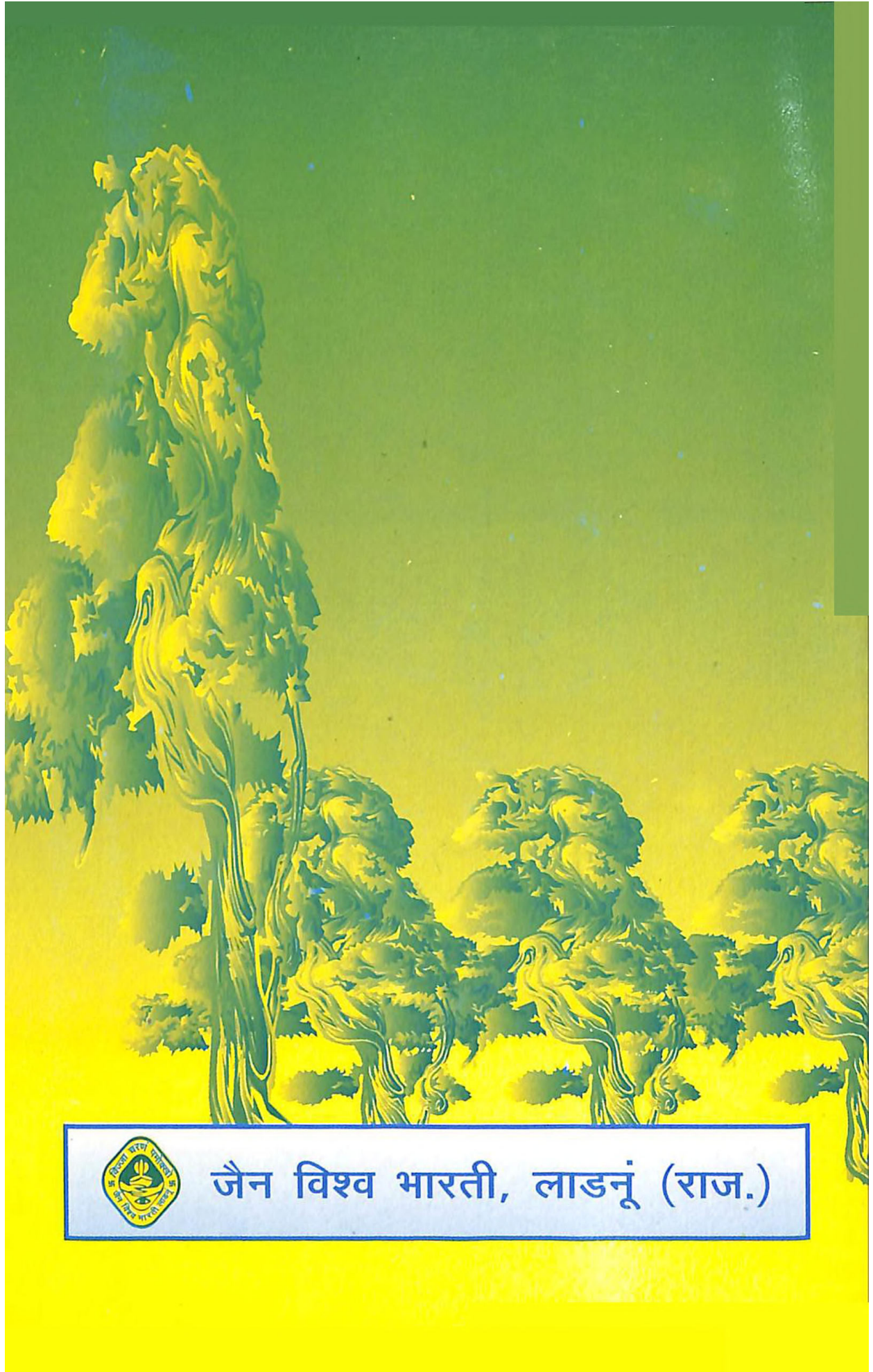
उद्योगवाद आर्थिक गुलामी का ही रूपान्तरण है, उसका एक पर्याय है। जैसे-जैसे उद्योग केन्द्रित होंगे, आर्थिक गुलामी की स्थिति अवश्य बनेगी, फलतः शोषण होगा। शोषण केवल समाज का ही नहीं होगा, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शोषण करेगा। जिस राष्ट्र के पास औद्योगिक क्षमता बढ़ेगी, वह उस क्षमता का उपयोग दूसरे राष्ट्र के शोषण में करेगा।

उद्योगवाद में दो बातें साथ चलती हैं—क्षमता के द्वारा शोषण तथा हिंसा। जहां उद्योगवाद को खुला अवकाश मिलता है, वहां युद्ध की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। महात्मा गांधी ने उद्योगवाद के विरोध में विकेन्द्रित उद्योग की बात कही, केन्द्रीकृत पूंजी के प्रतिपक्ष में विकेन्द्रित पूंजी और ट्रस्टीशिप की बात कही। इसका अर्थ है — गांधी जी ने अहिंसा और शान्ति को सामने रखकर अपने अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

सुखवाद की अवधारणा

हम महावीर की ओर चलें। महावीर के सामने मुख्य प्रश्न था संयम का, शान्ति और अहिंसा का। जहां संयम और शान्ति है, वहां अहिंसा है। अर्थशास्त्र में मुख्य प्रश्न रहता है संतुष्टि का। जनता को आवश्यकताओं की संतुष्टि और सुख — यह अर्थशास्त्र का मुख्य ध्येय रहा।

इसी ने उपभोक्तावाद को जन्म दिया है। इसी से प्रकृति का अधिक से अधिक दोहन हो रहा है जो पूरी धरती के लिए चिन्ता की बात है। इसीलिए संयम: खलु जीवनम् के रूप में अणुवत् अपने आप पर संयम करने की सीख देता है।



जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)